



फीजी और प्रवासी हिंदी साहित्य

डॉ. प्रियंका

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

महारानी किशोरी मेमोरियल कन्या महाविद्यालय

होडल, जिला-पलवल

सारांश: 'भारत में प्रवासी भारतीयों की चर्चा तथा उनके सम्बन्ध में गंभीर चिंतन मनन का शुभारम्भ महात्मा गांधी द्वारा दक्षिण अफ्रिका में व्यतीत किये गये लगभग इक्कीस वर्षों के उस संघर्षमयी जीवन यात्रा से माना जा सकता है जिसने पूरे विश्व का ध्यान अपनी और आकृष्ट किया। सही अर्थों में यह भारत के प्रवासी समुदाय से एकात्म स्थापित करने की एक ऐसी आरम्भिक पहल थी जिसने जल्द ही विभिन्न देशों में रहनेवाले गिरमिटिया बने भारतीय मजदूरों में एक नयी संचेतना का संचार किया। उनमें स्वत्व का भाव जागृत कर अपनी संस्कृति एवं भाषा को अक्षुण्ण बनाए रखने का भाव पुष्ट किया। उनकी इसी भावना की अभिव्यक्ति कालन्तर में साहित्य के जिस रूप से हुई उनमें प्रवासी साहित्य के आरम्भिक रूप की तलाश की जा सकती है। हिन्दी के प्रवासी साहित्य की स्थिति अंग्रेजी से तनिक भिन्न है। हिन्दी के आलोचकों ने हिन्दी के प्रवासी साहित्य को जिस तरह के नजरिये से देखना शुरू किया उससे उसे वह गरिमा नहीं मिल पाई जिसका वह हकदार था। परन्तु विगत तीन दशकों से जिस तरह के काम इसके अंतर्गत हुए हैं उससे वह भारत तथा विदेशों के हिन्दी जगत में एक गंभीर चर्चा के विषय के रूप में उभरकर सामने आया है और हिन्दी के आलोचकों ने इसके लेखन की गंभीरता को भी स्वीकार किया है। हिन्दी के प्रवासी साहित्य का एक अपना वैशिष्ट्य है जो उसकी संवेदना, परिपक्व जीवन दृष्टि और परिवेश में दिखाई पड़ता है। मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम आदि देशों में भारतवंशियों की दूसरी-तीसरी पीढ़ी के साहित्य में उनका देश बोलता है जिस पर निश्चित ही भारतीय संस्कृति, दर्शन था मूल्यों का गहरा प्रभाव है। अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों के लेखक पहली पीढ़ी के हैं और इसी कारण उनकी रचनाओं में स्वदेश-विदेश दोनों हैं। इनकी रचनाओं में अमेरिका एवं यूरोप के देशों की सुख-समृद्धि तथा तनाव एवं संघर्ष है और साथ ही स्वदेश की मिट्टी की मधुर स्मृति भी गुंथी हुई है। इस तरह दोनों ही प्रकार के प्रवासी साहित्य में भारत अवस्थित है, चाहे उसकी धर्म-संस्कृति के रूप में चाहे नोस्टेल्जिया अथवा अस्तित्व एवं अस्मिता निर्मिती के सूत्र की तलाश के रूप में भारत के हिन्दी समाज के लिए यह अपेक्षाकृत नई वस्तु है जिसमें नये कथानक और पात्रों के माध्यम से प्रवासी भारतीयों के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी के इस प्रवासी साहित्य का संसार अब इतना व्यापक हो चुका है कि उसने अपना एक आकाश बनाने में सफलता हासिल कर ली है। प्रवासी साहित्य आज ऐसे मुकाम पर पहुँच चुका है जहाँ वह हिन्दी साहित्य के व्यापक मानचित्र में उचित एवं सम्मानपूर्ण स्थान का मजबूत दावेदार बन बैठा है।

शब्द कुंजी: प्रवासी भारतीय, गिरमिट, भारतीय मजदूर, रचनाएँ,

प्रस्तावना: फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग सवा सौ वर्षों का है और यह साहित्य प्रधानतः भारतीयों के फीजी आगमन, उनके संघर्ष और विकास का दस्तावेज़ कहा जा सकता है। प्रवास में जहाँ व्यक्ति के मन में एक ओर नई जगह जाने का उत्साह है, चुनौती है, नई आशाएँ और कामनाएँ हैं वहीं दूसरी ओर विछोह की पीड़ा है, विस्थापन का कष्ट है और



भविष्य की आशंकाएँ हैं। अपनों का विछोह, अपनी मिट्टी का विछोह प्रवासी के मन में एक गहरी कसक उत्पन्न करता है। इस कसक को व्यक्ति नए सुखमय भविष्य की आशा में भुलाने की चेष्टा करता है। यदि नया वातावरण अधिक सुख सुविधा सम्पन्न है तो प्रवासी धीरे-धीरे नए वातावरण में रम जाता है और विछोह की पीड़ा धीरे-धीरे कम होती जाती है। वहीं दूसरी ओर यदि प्रवास वह वातावरण नहीं दे पाता जिस आशा से व्यक्ति अपना घर-बार छोड़कर विदेश गया है तो प्रवास बड़ा कष्टकर लगता है, उसका मन क्षोभ और ग्लानि से भर जाता है। न वह वापस अपने देश जा सकता है और न ही उसका मन यहाँ लगता है।

काल खण्ड: फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य को हम तीन काल खण्डों में बाँटकर देख सकते हैं। ये काल खण्ड फीजी में भारतीयों के संघर्षमय जीवन के मुख्य पड़ाव हैं और इनमें हम भारतीयों की सृजनात्मक साहित्यिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट मोड़ों को भी देख सकते हैं।

पहला काल खण्ड 1879 ई० से 1920 ई० का है। 1879 का वर्ष फीजी में भारतीयों के पदार्पण का वर्ष है। भारतीय मज़दूरों की पहली खेप इसी वर्ष लेवनीदास जहाज़ से फीजी पहुँची थी। 1916 ई० तक भारतीयों के फीजी आने का सिलसिला चलता रहा और फीजी सरकार ने भारतीयों के आने पर अब प्रतिबंध लगा दिया। 1920 में गिरमिट प्रथा समाप्त हो गई और भारतीय मज़दूर जो गिरमिट प्रथा के अंतर्गत नारकीय जीवन बिताने को विवश थे अब वे स्वतंत्र जीवन जीने के तथा फीजी में स्थायी रूप से बसने के अधिकारी हो गए। इस प्रकार सन् 1879 का वर्ष तथा सन् 1920 का वर्ष दोनों ही फीजी में बसे हुए भारतीयों के लिए महत्वपूर्ण वर्ष हैं और इस काल खण्ड की सृजनात्मक अभिव्यक्ति कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस चालीस वर्ष की अवधि में इन प्रवासी भारतीयों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति लोकगीतों में हुई जो साहित्यिक दृष्टि से उत्तम अभिव्यक्तियाँ तो हैं ही ये प्रवासी भारतीयों के गिरमिट जीवन के मौखिक दस्तावेज़ हैं जिनका ऐतिहासिक तथा समाजशास्त्रीय महत्व भी है। इनका मुख्य विषय गिरमिट जीवन का कष्ट, निराशा, क्षोभ और ग्लानि है, गिरमिट की अपमानजनक स्थिति से उबरने की आशा न देखकर हताशा और घोर पश्चाताप है। मानव चाहे धनी हो या निर्धन, शिक्षित हो या निरक्षर, सामान्य नागरिक हो या सम्मानित महापुरुष वह अभिव्यक्ति चाहता है अपने सुख-दुख को मानव बाँटना चाहता है। कहा जाता है सुख बाँटने से बढ़ता है और दुख बाँटने से घटता है। 1879 में जब भारतीयों ने फीजी की भूमि पर पैर रखा तो रोज़ दिनभर के कठिन श्रम के बाद वे सब साथ बैठते, आपस के सुख-दुख बाँटते और अपने साथ जो वह रामचरित मानस की पोथी ले गए थे उसको बाँचते। राम के बनवास के 14 वर्ष की अवधि की वे अपने फीजी प्रवास से तुलना करते और सोचते कि जब राम के कठिन बनवास के 14 वर्ष बीत गए तो उनके भी ये पाँच-छः वर्ष बीत जाएँगे और फिर वे अपने देश भारत वापस पहुँच जाएँगे। इन प्रवासी भारतीयों ने अपने गिरमिट जीवन के दारुण दुखों को गीतों में पिरो दिया है। एक भारतीय जो अपना घर-बार सब कुछ छोड़कर ब्रिटिश एजेंटों द्वारा बहला फुसला कर गन्ने के खेतों में काम करने के लिए फीजी भेज दिया गया जब फीजी पहुँचकर स्थिति पूर्णतया विपरीत देखता है तो दुखी हो जाता है, उसे लगता है कि वह छला गया है।

फीजी के हिंदी साहित्य का दूसरा काल खण्ड 1921-1980 तक कहा जा सकता है। सन् 1920 में गिरमिट प्रथा समाप्त हो गई और भारतीय श्रमिक जो एक बड़ी संख्या में फीजी पहुँच चुके थे



अब शर्तबंदी से मुक्त हो स्वेच्छा से जीने के हकदार हो गए। अधिकांश भारतीयों ने गिरमिट पूरा करने के बाद भारत वापस लौटने के बदले फीजी में स्थायी रूप से बसने का मन बना लिया। वे तो अपना घर-बार सब छोड़कर फीजी आए थे और उन्हें अब यह भी लगने लगा कि फीजी में जीवन की सुख-सुविधाएँ अधिक हैं और यहाँ वे सुखी जीवन बिता सकते हैं। अब उनमें आत्म सम्मान की भावना जगी और आत्म विश्वास बढ़ा कि वे फीजी में नए जीवन का निर्माण करेंगे। भारतीयों में अब नव चेतना का विकास हुआ। वे राजनीतिक अधिकारों के प्रति भी सजग हुए। शिक्षा की ओर उनकी दृष्टि गई और भारतीयों के मध्य अब नए जीवन का उत्साह दिखने लगा। अब वह फीजी के बहु-जातीय समाज में अपनी अस्मिता बचाए और बनाए रखने के लिए सजग हो गए।

1920 से 1980 तक का समय फीजी में सृजनात्मक हिंदी साहित्य का दूसरा चरण माना जा सकता है। अब साहित्य ने नई करवट ली। जो साहित्यिक अभिव्यक्ति अब तक केवल लोकमानस तक ही सीमित थी और जन भावनाएँ लोकगीतों में ही अभिव्यक्ति पा रही थीं उनका स्वरूप बदला, अभिव्यक्ति के विषय व्यापक हुए और अब साहित्य में निराशा और क्षोभ तथा ग्लानि के स्थान पर उत्साह और उल्लास भी दिखाई देने लगा। भारतीयों के मन में नए सिरे से जीवन जीने की लालसा और उसके साथ जुड़ी हुई चिंताएँ उनके मन में उठने लगीं। भारतीयों ने फीजी को अपना नया देश स्वीकार कर लिया। देश के विकास में उन्हें अपना विकास दिखने लगा। यह समय गिरमिट में आए हुए प्रवासी भारतीयों की तीसरी तथा चौथी पीढ़ी का था। भारतीयों ने अब संगठित होकर आत्म विकास के लिए योजनाएँ बनाई, संघर्ष किया और नए देश में नए सिरे से अपने को प्रतिष्ठित किया।

1920 का वर्ष जहाँ फीजी के इतिहास में गिरमिट प्रथा की मुक्ति के कारण महत्वपूर्ण है वहीं 1970 में फीजी, ब्रिटिश शासन से मुक्त हो स्वाधीन राष्ट्र बना। देश ने विकास के लिए नई योजनाएँ बनाई और उसमें भारतीयों की भागीदारी बढ़ी। 1979 में शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत आए भारतीयों ने अपने फीजी आगमन के सौ वर्ष पूरे किए और शताब्दी वर्ष विजय वर्ष के रूप में मनाया। इस प्रकार 1920 से 1980 तक का काल खण्ड जहाँ फीजी के राजनीतिक जीवन में महत्व रखता है।

गिरमिटिया प्रथा: गिरमिट प्रथा से मुक्त होते ही भारतीयों ने संगठित होकर रहने और एक दूसरे से जुड़े रहने के लिए पत्रकारिता के महत्व को समझा और हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ निकालनी प्रारंभ कीं। जागृति, फीजी समाचार, जय फीजी, वृद्धि, वृद्धिवाणी आदि अनेक हिंदी समाचार पत्र निकले। यहाँ तक कि अँग्रेज़ कंपनी फीजी टाइम्स ने फीजी में भारतीयों की बड़ी संख्या देखकर फीजी टाइम्स के हिंदी संस्करण निकालने की बात सोची और 1935 में शांतिदूत साप्ताहिक पत्र पं० गुरुदयाल शर्मा के संपादन में निकालना प्रारंभ किया जो आज अपनी 75वीं जयन्ती मना रहा है। अनेक मंदिरों, गुरुद्वारों और मस्जिदों का निर्माण भी हुआ जो भारतीयों के लिए सांस्कृतिक केन्द्र की भूमिका निभाते थे। अनेक रामायण मंडलियाँ बनीं जिनमें प्रति सप्ताह रामायण गायन तो होता ही था साथ ही भारतीय आपस में मिल जुलकर बैठते, साहित्यिक गोष्ठियाँ होतीं, जीवन की विविध समस्याओं पर विचार होता तो भारतीय जीवन को सुखद बनाने के उपाय सोचते। 1954 में ही फीजी ब्राडकास्टिंग कॉर्पोरेशन की स्थापना हुई और इस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं के



प्रकाशन तथा रेडियो प्रसारण की सुविधा ने लेखकों और कवियों को लेखन के लिए प्रोत्साहित किया। विशाल स्तर पर फीजी के विभिन्न विद्यालयों में हिंदी भाषा और साहित्य का शिक्षण भी प्रारंभ हुआ और हिंदी को फीजी की प्रधान भाषा के रूप में सरकारी मान्यता भी मिली।

इस काल का साहित्यिक फलक बहुत विशाल है। अनेक नए कवि साहित्य क्षितिज पर उभरे। बदली हुई परिस्थितियों ने भारतीयों के मन में जो आशा का नव संचार किया उससे अनेक नई और अच्छी रचनाएँ सामने आईं। हिंदी पत्रिकाओं में उनका प्रकाशन हुआ और वे देश के कोने-कोने तक पहुँचीं। गिरमिट जीवन अभी भी साहित्य की मूल संवेदना बना रहा किंतु अनेक नए विषयों पर भी कवियों ने लिखा।

सूवा के भरत वी. मोरिस ने 1974-75 के आसपास अपनी दो गद्यात्मक रचनाएँ प्रकाशित कीं जिन्हें हम लघु उपन्यास या लंबी कहानी की संज्ञा दे सकते हैं। ये प्रेम और रोमांसपरक होने के कारण सामान्य जनवर्ग के मध्य लोकप्रिय थीं। उनकी गीतों भरी कहानियाँ फीजी रेडियों से लंबे समय तक प्रसारित होती रही हैं और जनता का मनोरंजन करती रही हैं। इन्हीं गीतों भरी कहानियों की श्रोताओं द्वारा प्रशंसा और प्रोत्साहन ने उन्हें 'हाय ने जिंदगी' और 'गली गली सीता रोएके लिए प्रेरणा दी पर फीजी में सृजनात्मक लेखक को उपयुक्त प्रोत्साहन तथा मार्ग दर्शन न मिलने के कारण निराश होकर लेखन से उन्होंने संन्यास ले लिया और आस्ट्रेलिया चले गए तथा व्यापार में लग गए। 'हाय से जिंदगी' की संक्षिप्त भूमिका में वे उसका उल्लेख भी करते हैं - "हमारे देश में स्थानीय लेखकों, कहानीकारों तथा कवियों को सही मात्रा में प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है और न ही कोई अच्छा मार्ग दर्शक है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए यहाँ लेखक संघ बना, हिंदी महापरिषद् की स्थापना हुई - फीजी के लेखकों को इस बात का अफ़सोस हमेशा रहेगा कि भारतीय साहित्य को पुनः जीवित करने के लिए इन संस्थाओं ने कभी कोई क्रियात्मक कदम नहीं उठाए।"

पंजाब के भाई चनण सिंह गिरमिट प्रथा के अंतर्गत फीजी गए थे। सन् 1958 में उनके पुत्र जोगिन्द्र सिंह कँवल जो उस समय 31 वर्ष के थे वे भारत से फीजी पहुँचे। उन्होंने गिरमिट के अंतर्गत फीजी आए वृद्ध भारतीयों से संपर्क किया, उनकी कठिनाइयों और उनकी महत्वाकांक्षाओं को समझने का प्रयत्न किया और इन प्रवासी भारतीयों को अपनी रचना के केन्द्र में रखते हुए कई औपन्यासिक कृतियाँ हिंदी जगत को दीं। सन् 1976 में कँवल का प्रथम उपन्यास 'सवेरा' प्रकाशित हुआ। उसके बाद 'धरती माता' (1976) तथा 'करवट' (1978) प्रकाशित हुए। ये तीनों ही कृतियाँ गिरमिट जीवन के साहित्यिक औपन्यासिक दस्तावेज़ हैं जिसमें लेखक ने गिरमिटियों की यंत्रणा, उनके संघर्ष, उनकी आशा निराशा को विविध मौखिक अनुभवों के सहारे कथा सूत्र में पिरोकर पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

1979 में भारतीयों को फीजी आए सौ वर्ष पूरे हो रहे थे। भारतीय संगठित होकर देश की राजनीति में भागीदारी चाहते थे। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन से भी वे परिचित थे और प्रभावित थे। भारतीयों की यही बदली हुई दृष्टि लेखक ने 'करवट' शीर्षक रखकर बतानी चाही है। 'धरती मेरी माता' उपन्यास में लेखक फीजी में भारतीयों के 'ज़मीन के अधिकार' को लेकर उसे कहानी का रूप देता है। वस्तुतः जोगिन्द्र सिंह कँवल के ये तीनों ही उपन्यास फीजी में बसे भारतीयों की विविध समस्याओं को आधार बनाकर लिखे गए महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।



फीजी के साहित्यिक इतिहास का तीसरा काल खण्ड 1980 से प्रारंभ होता है। अब फीजी के बहुजातीय समाज में भारतीयों की स्थिति सम्मानजनक थी। सम्पन्न, सुशिक्षित तो थे ही, वे फीजी में प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत भी थे। देश को नए ढंग से सँवारने में, उसके चतुर्विध विकास में वे लगे हुए थे और साथ ही वे सुसंगठित भी थे। अपने भारतीय जीवन मूल्यों को सँजोए हुए वे स्वभाषा, स्वसंस्कृति की रक्षा और प्रतिष्ठा में लगे हुए थे। अनेक भारतीयों ने भारत सरकार के सहयोग से भारतीय छात्रवृत्तियों पर भारत जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त की थी तो कुछ आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में शिक्षा ग्रहण कर प्रतिष्ठित पद पर भी कार्यरत थे। देश में भारतीयों ने अनेक धार्मिक, सामाजिक व साहित्यिक संस्थाएँ बनाईं और सबका लक्ष्य एक ही था, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय समाज को संगठित एवं सुदृढ़ करना। देश में भारतीय अलग-अलग भाषाओं के बोलने वाले थे किंतु हिंदी सभी समझते और बोलते थे और हिंदी इस प्रकार समस्त भारतीयों को जोड़ने वाली भाषा फीजी में बन गई थी इसलिए सभी भारतीय हिंदी को स्थापित करने के लिए एकजुट प्रयत्न करते थे। सन् 1986 में भारतीयों ने राष्ट्रव्यापी स्तर पर हिंदी दिवस का आयोजन किया जिससे संपूर्ण देश को भारतीयों के संगठित स्वरूप का परिचय मिला। इस बीच भारतीयों के निजी प्रयत्नों से अनेक हिंदी लेखकों की कृतियों का प्रकाशन भी हुआ। संयोग ऐसा कि जब फीजी अपने नव निर्माण में व्यस्त था अचानक फीजी के राजनीतिक जीवन में एक तूफान आया और कर्नल रम्बूका ने फीजी की शासन सत्ता बलात् अपने हाथों में ले ली और फीजी में 1987 में सैनिक शासन लागू हो गया। इस सत्ता परिवर्तन के मूल में फीजी के मूल निवासियों के मन में भारतीयों की देश में बढ़ती सामाजिक तथा राजनीतिक वर्चस्वता के प्रति उनके मन में पनपती शंका थी कि भारतीय फीजी की शासन सत्ता अपने हाथों में लेना चाहते हैं। अब देश में भारतीयों के प्रति विरोधी वातावरण बनने लगा और अनेक भारतीय देश की राजनीतिक अस्थिरता को देखते हुए आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड जाने की तैयारी करने लगे। 1987 में भारतीय हाई कमीशन बंद कर दिया गया। भारतीयों के मन में असुरक्षा की भावना पनपने लगी विशेषकर उनके मन में जो फीजी छोड़कर दूसरे देश जाना नहीं चाहते थे। 1986 तक देश में जहाँ भारतीयों का प्रतिशतक 52% था वह अब घटकर 47% प्रतिशत ही रह गया। स्वाभाविक ही था कि इस बदली हुई देश की राजनीतिक स्थिति में देश की साहित्यिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इतना ही नहीं 1987 में हुई राजनीतिक अशांति देश में बढ़ती ही गई और भारतीयों के विरुद्ध शासन का दमन चक्र तेज़ होता गया। यह अशांति का दौर लगभग 20 वर्षों तक चलता रहा। सन् 2000 ई० में फिर राजनीतिक संकट देश पर आया और देश में संविधान बदल कर भारतीयों के अधिकार कम कर दिए गए। भारतीयों के मन में क्षोभ, असन्तोष और ग्लानि ने जन्म लिया। 1987 से 2000 ई० तक के बीच की साहित्यिक रचनाओं में इस असन्तोष की झलक दिखाई पड़ेगी। पर आतंक के साये में सृजनात्मकता कुंठित हो जाती है और शासकीय व सैनिक भय के कारण कवि कुछ कहने और लिखने से कतराते हैं फिर जब देश के मूल निवासी न हों तो भावनाओं की अभिव्यक्ति और भी संभव नहीं होती।

देश में धीरे-धीरे फिर शांति का माहौल बना और भारतीयों के मन में जो आतंक, अविश्वास और शंका ने घर कर लिया था उसको थोड़ी राहत मिली। इस काल खण्ड में यद्यपि अधिक श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं की सृष्टि नहीं हो सकी किंतु कुछ प्रमुख गद्य कृतियाँ इसी समय प्रकाशित हुईं



और उन्होंने देश विदेश में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की। 21वीं शती के पहले दशक में ही सुब्रमनीकी कृति डउका पुरान (2001) प्रकाशित हुई, ब्रज विलास लाल की उपन्यासिका मारित (2004) का प्रकाशन हुआ, बाबू राम शर्मा के लेखों का पुस्तकाकार संकलन (2003) प्रकाशित हुआ।

अव्याकरणिक रचनाएँ: सुब्रमनी, ब्रज विलास लाल, रेमण्ड पिल्लई ये सभी गिरमिटियों के वंशज रहे हैं। इन सभी ने अपने माता-पिता के जो शर्तबंदी में भारत से सब कुछ घर-बार छोड़ आये थे दुख-दर्द को देखा है, उसके भागी रहे हैं इसलिए उनकी रचनाओं में जीवन की यथार्थता का जो परिचय दिखता है वह अन्य भारतीयों की रचनाओं में सामान्यतः नहीं दिखता। इन्होंने संभवतः यही कारण है कि अपने पूर्वजों की भाषा जो उनकी भाषा भी रही उसे ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया क्योंकि इस पर उनका पूर्ण अधिकार है। इसकी भाव व्यंजनाओं को वे अच्छी तरह समझते हैं और नित्यप्रति प्रयोग करते हैं। इन कृतियों की भाषा ही इनका सबसे बड़ा सौंदर्य है। यदि ये मानक हिंदी जो इनकी सीखी हुई और केवल औपचारिक अवसरों पर भारतीयों से बात करने के लिए वे जिसका व्यवहार करते हैं, ये उपन्यास लिखते तो रचना का सारा सौंदर्य बिखर जाता। फीजी हिंदी में लिखने का सबसे बड़ा लाभ इन लेखकों को यह मिला कि इनमें व्याकरणिक अशुद्धियाँ नहीं दिखती जो भाषा के सहज प्रवाह से बनाए रखती है और पठनीयता में बाधा उत्पन्न नहीं करती। साथ ही इन कृतियों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को और सम्प्रेषणीय बनाता है।

इन महत्वपूर्ण कृतियों के प्रकाशन पर फीजी के शुद्धतावादी हिंदी प्रेमियों ने इनका विरोध करते हुए कहा कि इनकी भाषा अशुद्ध, अव्याकरणिक तथा टूटी-फूटी है तथा ऐसी कृतियों का प्रकाशन हिंदी के विकृत रूप को प्रतिष्ठित करना चाहता है। सच्चाई तो यह है कि जो भाषा जिस रूप में जनवर्ग के मध्य बोली जाती है, वही उसका शुद्ध रूप है। फीजी हिंदी कोई कृत्रिम भाषा रूप नहीं है वह तो गिरमिटियों द्वारा विकसित हिंदी की वह शैली है जो उनकी अपनी है, जिसका वे नित्यप्रति आपस में व्यवहार करते हैं यही कारण है कि अपनी भाषा में लिखने के कारण उनकी रचनाएँ जन मन को आंदोलित कर सकीं। इन तीनों ही कृतियों में भारतीयों के जनजीवन, उनकी रीति-नीति, उनकी संवेदनाओं का, उनकी अपनी समस्याओं का चित्रण दिखेगा।

इस काल की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यही कही जाएगी कि अब देश के प्रतिष्ठित सुशिक्षित साहित्यकारों ने फीजी हिंदी के महत्व को समझा और उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना। मानक हिंदी में लिखने वाले अच्छे लेखक वहीं रह गए जो फीजी में गिरमिट प्रथा के समाप्त होने पर पहुँचे थे, जिनका मानक हिंदी पर अधिकार तो था किंतु फीजी हिंदी की शक्ति और सौंदर्य ये अपरिचित थे और फीजी हिंदी को समझ लेते थे किंतु फीजी के प्रतिष्ठित साहित्यकार, इतिहासकार होने के साथ ही सामान्य अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रोफेसर और विद्वान भी हैं और देश के प्रतिष्ठित साहित्यकार भी और इन्होंने 'फीजी हिंदी' में भारतीय समाज की चिंताओं और जीवन को उकेरने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि इनकी कृतियों को फीजी में तो लोकप्रियता प्राप्त हुई ही विश्व के सभी भारतीयों के मध्य प्रतिष्ठित रचना के रूप में स्वीकृत हुई। प्रो० सुब्रमनीकी रचना डउका पुरान को सूरीनाम में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में श्रेष्ठ कृति के रूप में मान्यता मिली तथा प्रो० सुब्रमनीको 'विश्व हिंदी सम्मान' प्राप्त हुआ। फीजी के सृजनात्मक हिंदी लेखन में लेखकों का सम्मान 'अपनी हिंदी' के प्रति निरंतर बढ़ता जा रहा है और अधिक



अच्छी रचनाएँ आ रही हैं। मानक हिंदी में लिखने वाले अच्छे लेखक निरंतर कम होते जा रहे हैं। प्रवासी लेखन की यह प्रकृति केवल फीजी में ही नहीं सूरीनाम में दिख रही है जहाँ प्रतिष्ठित लेखकों का रुझान सरगमी की ओर अधिक बढ़ रहा है। राजनीतिक अस्थिरता के युग में सृजनात्मक हिंदी लेखन निश्चय ही प्रमाणित हुआ है और जो एक उत्साह 1986 तक फीजी के भारतीयों में सृजनात्मक लेखन के प्रति दिखता था वह अब नहीं दिख रहा।

प्रगति का नैसर्गिक स्वरूप भी यही है जब व्यक्ति की जड़ जम जाती है जब वह आरोपित माध्यमों में रुचि नहीं लेता वह सृजनात्मक रचना अपनी मातृभाषा में ही करना चाहता है और यही स्थिति फीजी के सृजनात्मक लेखन में भी पनप रही है। फीजी के साहित्य का मध्यकाल वस्तुतः एक संक्रमण काल है इसलिए वहाँ भाषा द्वैत की स्थिति दिखाई पड़ती है जो उन लोगों के कारण उत्पन्न हुई जो गिरमिट प्रथा समाप्त होने के वर्षों बाद फीजी पहुँचे और हिंदी भाषी थे या जो भारत में रहकर पढ़े और हिंदी पर उनका अच्छा अधिकार हो गया। उनके लिए फीजी हिंदी में लिखना संभव ही नहीं था इसलिए वे मानक हिंदी का पक्ष लेते रहे।

फीजी साहित्य: यदि फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का आकलन किया जाए तो कुछ बातें उभर कर सामने आती हैं - फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग सवा सौ वर्षों का है और उसकी मूल संवेदना गिरमिट जीवन है जो प्रारंभिक लोकगीतों से लेकर आज तक लिखे जाने वाले साहित्य में अविच्छिन्न रूप में दिखाई पड़ती है। विद्योह की पीड़ा, क्षोभ, कष्ट, ग्लानि जहाँ प्रारंभिक रचनाओं में दिखता है वहीं आगे वह स्वदेश, स्वभाषा, स्वसंस्कृति की रक्षा, सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष, उहापोह की स्थिति-विस्थापन और प्रस्थापना और समकालीन साहित्य में फिर अतीत का वर्णन या संक्षेप में कहें तो 'स्व' के लिए संघर्ष है।

प्रारंभिक रचनाएँ (1789-1920) अवधी या यों कहिए जो गिरमिटियों की भाषा 'फीजी हिंदी' है उसमें दिखेंगी। ये रचनाएँ प्रायः लोक शैली में हैं जिनमें कोई बनाव-शृंगार नहीं। ये सरल मानव की सहज अभिव्यक्ति होने के कारण बड़ी मार्मिक हैं और गिरमिट जीवन के मौखिक दस्तावेज़ कही जा सकती हैं जिनका साहित्यिक महत्व के साथ ही ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय महत्व भी है। (1920-1986) की रचनाओं की भाषा मानक हिंदी है जिसे प्रयास पूर्वक इन भारतीयों ने सीखा है और जिसका प्रचार प्रसार वह फीजी में चाहते हैं। अतएव ऐसी सीखी हुई हिंदी में लिखी गई रचनाओं में वचन, लिंग, कारक आदि की अशुद्धियों के साथ ही सीमित शब्द भंडार की अभिव्यक्ति होने के कारण ये वह प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाती जो साहित्यिक श्रेष्ठता की प्रतिमान हैं। पं० कमला प्रसाद मिश्र जैसे लेखक इसके अपवाद हैं जिन्होंने भारत में रहकर हिंदी का दीर्घकाल तक अभ्यास किया है और जिनका भाषा पर अदभुत अधिकार है।

समकालीन साहित्य (1980 से आज तक) के समय में प्रतिष्ठित साहित्य लेखक मानक हिंदी को छोड़कर फीजी हिंदी में लिख रहे हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि साहित्यिक अभिव्यक्ति मातृभाषा में ही प्रभावशाली हो सकती है इसलिए सुब्रमणी, रेमण्ड पिल्लई, ब्रिज विलास, बाबू राम शर्मा सभी फीजी हिंदी में लिखने के पक्षधर हैं। इतना ही नहीं इनमें से अनेक लेखक देवनागरी से अपरिचित होने के कारण अपनी रचनाएँ फीजी हिंदी में रोमन लिपि में लिख रहे हैं क्योंकि फीजी हिंदी तो उनकी अपनी भाषा है किंतु हिंदी की आधार लिपि देवनागरी से उनका परिचय नहीं है।



फीजी को सृजनात्मक हिंदी साहित्य में चाहे विषयगत विविधता बहुत अधिक न हो; भाषा की दृष्टि से उनमें व्याकरणिक अशुद्धियाँ भी दिखाई पड़ें किंतु भावों की सीधी सच्ची अभिव्यक्ति निश्चित ही इनमें मिलेगी। यह सत्य है कि फीजी के हिंदी साहित्य की तुलना भारत के हिंदी साहित्य से नहीं की जा सकती किंतु प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य में फीजी के हिंदी साहित्य का अपना महत्व है और वे एक दूर देश में बसे हुए प्रवासी भारतीयों की अभिव्यक्तियाँ हैं जो नए देश में उनके जीवन संघर्ष की प्रारंभिक काल से लेकर आज तक की विविध परिस्थितियों का सच्चा स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं।

विदेश में लिखे जा रहे सृजनात्मक हिंदी लेखन तथा भारत में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य में स्तर का अंतर निश्चित ही है किंतु यह अंतर वहीं है जो अंग्रेजी भाषी देशों में लिखे जा रहे अंग्रेजी साहित्य का है। अंग्रेजी कई देशों की मुख्य भाषा है जबकि हिंदी केवल भारत देश की ही मुख्य भाषा है। भारत से बाहर लिखा जा रहा हिंदी साहित्य भी यदि परिमाण की बात छोड़ दी जाए अनेक ऐसे लेखक हैं जिसकी तुलना भारत के किसी भी श्रेष्ठ लेखक से की जा सकती है। फीजी के पं० कमला प्रसाद मिश्र, प्रो० सुब्रमणी, प्रो० रेमण्ड पिल्लई, श्री जोगिन्द्र सिंह कँवल आदि अनेक ऐसे लेखक हैं जो अपने देशों में तो श्रेष्ठ लेखक माने ही जाते हैं, भारत में भी उनकी प्रतिष्ठा है। भारत सरकार ने विश्व हिंदी सम्मान से उन्हें सम्मानित कर उन्हें अन्तरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी दिलाई है।

साहित्य का मूल्यांकन केवल साहित्यिक कलात्मकता के परिप्रेक्ष्य में ही सर्वदा नहीं होता, प्रवासी सृजनात्मक हिंदी लेखन का साहित्य के साथ ही एक समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी है जिसमें भारतीय गिरमिटियों का जीवन संघर्ष प्रतिबिंबित होता है। वह एक सरल मन की सहज अभिव्यक्ति भी है और हर पाठक के अन्तर्मन को ये छूने वाली है इसीलिए बड़ी मार्मिक लगती है। कलात्मकता का सौंदर्य उनमें इसलिए नहीं है क्योंकि वे हिंदी में अपने भावों की अभिव्यक्ति का प्रयास कर रहे हैं वह परिनिष्ठत हिंदी उनकी अपनी नहीं है, सीखी हुई है इसलिए उसमें भाषा की व्याकरणगत अशुद्धियाँ तो हैं, सीमित शब्द संपदा के कारण अर्थ छवियों का सौंदर्य भी नहीं है किंतु जो रचनाएँ फीजी हिंदी में लिखी गई हैं वे साहित्यिक विषय भी श्रेष्ठ हैं। उत्कृष्ट साहित्य लेखन भाषा पर पूर्ण अधिकार की अपेक्षा रखता है तभी अभिव्यक्ति की भंगिमाएँ सम्प्रेषण चमत्कार उत्पन्न करती हैं। वस्तुतः साहित्यिक उत्कृष्टता देश में या विदेश में लिखे साहित्य से नियंत्रित नहीं होती। साहित्यिक उत्कृष्टता सहज मन की सरल अभिव्यक्ति में देखी जाती है। पर मानक हिंदी में लिखित श्रेष्ठ रचनाओं की भी फीजी में कमी नहीं है। पं० कमला प्रसाद मिश्र की रचनाओं की तुलना हिंदी के किसी भी श्रेष्ठ कवि से की जा सकती है।

निष्कर्ष: फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का मूल्यांकन करते हुए हमें हिंदी के वैश्विक स्वरूप को ध्यान में रखना होगा। हिंदी आज केवल भारत की ही भाषा नहीं है, वह विदेश में बसे हुए दो करोड़ से अधिक भारतीयों की संपर्क भाषा भी है। उनकी भारतीय अस्मिता की प्रतीक बन गई है। किंतु प्रवासी भारतीयों की हिंदी की अनेक विदेशी भाषिक शैलियाँ उसी प्रकार बन गई हैं जैसे भारत में हिंदी की जगह प्रमुख ग्रामीण बोलियों के अतिरिक्त कितनी हिंदी की अंतर्प्रतिय शैलियाँ बन गई हैं जैसे बंबइया हिंदी, कलकतिया हिंदी, मद्रासी हिंदी, दरिबती हिंदी आदि। इसी प्रकार



प्रवासी भारतीयों ने हिंदी की विविध शैलियाँ अपने देशों में विकसित की हैं जैसे फीजी हिंदी, सरनामी हिंदी, नैताली आदि। सभी शैलियों में लिखित साहित्य हिंदी का अपना साहित्य है जो हिंदी के विश्वव्यापी स्वरूप को प्रदर्शित करता है। फीजी में आज हिंदी के ऐसे अनेक साहित्यकार हैं जिनकी रचनाएँ अपने देश में तो अति लोकप्रिय हैं ही, भारत में भी हिंदी पाठकों के बीच पढ़ी जाती हैं और प्रशंसित हैं। ऐसी सभी उत्कृष्ट रचनाएँ हिंदी साहित्य की निधि हैं।

सदर्भ सूची:

- फीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य
- फीजी हिंदी साहित्यकार सुब्रमनि का हिंदी उपन्यास
- फीजी में भारतीयों का इतिहास और उनका जीवन (1879-1947)
- फीजी हिंदी साहित्य और साहित्यकार: एक परिदृश्य
- 'फीजी का पहला हिंदी उपन्यास: डौका पुराण'
- फीजी प्रवासी साहित्य पर छपे समापदकीय लेख

Dr. Priyanka

H.No 249/8 New Colony

Near DPS Junior Wing

Distt- Palwal

121102

Ph: 9068282335

Email: drpriyanka45678@gmail.com